अंतरा-शब्दशक्ति

चक्रव्यूह

(कहानी मेरे अस्तित्व के कशमकश की)

नीरजा मेहता ''कमलिनी''

चक्रव्यूह
(कहानी मेरे अस्तित्व के कश्मकश की)

नीरजा मेहता 'कमलिनी'

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-88102-76-6

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- नीरजा मेहता कमलिनी

मूल्य - ५५.०० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Chakravyuh by Neeraja Mehta 'Kamalini'

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

"ये कहानी है हर नारी की"

प्रिय पाठकों,

जब भी मैं
ख़ुद को चक्रव्यूह में क़ैद देखती हूँ
उसे भेद कर बाहर आ जाती हूँ,
दुनिया को अपने
अस्तित्व की पहचान कराती
सबको दिखा देती हूँ
मेरा अस्तित्व मुझमें
ही समाया है, क्योंकि
मैं स्वयं ही अपना अस्तित्व हूँ।

जीवन बहुत अनमोल है और चौरासी लाख योनियों में जब मनुष्य जन्म मिला है तो हमारा ये प्रयास होना चाहिए कि ये व्यर्थ न जाये। जन्म-मरण तो संसार का नियम है किन्तु जन्म उसी का सार्थक है जिसने अपने जीवन में अपनी पहचान बनाई है और कुछ अलग करके दिखाया है। पुरुष हो या स्त्री दोनों की अपनी पहचान होनी आवश्यक है। जीवन तो पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भी जीते हैं फिर यदि मनुष्य भी उसी तरह जीवन जीने लगे तो दोनों में अंतर ही नहीं रह जायेगा। ईश्वर ने मनुष्य को सिर्फ जीवन ही नहीं दिया अपितु बुद्धि भी दी है अतः मानव अपनी बुद्धि के सही उपयोग से अपना जीवन सार्थक कर सकता है।

नारी को माध्यम बनाकर लिखी गयी अपनी इस पुस्तक में मैंने यही समझाने का प्रयास किया है कि सार्थक जीवन ही हमारी अनमोल निधि है। यूँ तो आज हमारे देश में नारियों की स्थिति में बहुत सुधार हुआ है किन्तु अभी भी नारी को वो स्थान, वो सम्मान नहीं मिला जिसकी वो हक़दार है।

यद्यपि हर क्षेत्र में नारी ने अपनी पहचान बनाई है, आज पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर नारी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है तथापि जिस प्रकार के अनैतिक आचरण का शिकार नारियाँ हो रहीं हैं, जिस प्रकार का भय उनके मन में समाया हुआ है वो सचमुच दुःखद है। नवजात बच्ची से लेकर अस्सी-नब्बे वर्ष तक की वृद्ध स्त्री भी आजकल सुरक्षित नहीं है और सदा से अन्याय सहती आई है। इसी अन्याय से आहत मेरे मन ने मुझे कलम उठाने पर मजबूर किया।

मेरी ये कहानी सिर्फ मेरी नहीं है, हर उस नारी की है जो ज़िन्दगी के कश्मकश से जूझ रही है। जन्म लेने से पूर्व ही ये कश्मकश प्रारम्भ हो जाता है और जीवन के अंतिम समय तक चलता है। ज़िन्दगी के चक्रव्यूह से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व के खोज की जद्दोजहद ही मेरी इस पुस्तक की कहानी है। कई जन्मों के फेर में उलझी ज़िन्दगी किस प्रकार स्वयं का अस्तित्व तलाशती है, किस प्रकार अपने अस्तित्व को पाने के लिए लड़ाई लड़ती है यही मेरी पुस्तक की कहानी है। न तो मेरे विचार पुरुषों के खिलाफ़ हैं और न ही मैं उनको हीन दृष्टि से देखती हूँ अपितु मैं तो ये मानती हूँ कि स्त्री-पुरुष दोनों का अपना अस्तित्व है, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और एक के बिना दूसरा अधूरा है। मैं हर उस स्त्री और पुरुष के साथ नहीं हूँ और हर उस स्त्री और पुरुष के साथ मैं तालमेल नहीं बैठा पाती जिनकी मानसिकता ओछी है। जो भी मैंने इस पुस्तक में कलमबद्ध किया है कुछ नया नहीं है लेकिन जब भी आप इसको पढ़ेंगे आपको लगेगा कि ये आपकी अपनी कहानी है।

आपकी शुभकामनाओं की आकांक्षिणी
नीरजा मेहता 'कमलिनी'

चक्रव्यूह
(कहानी मेरे अस्तित्व के कश्मकश की)

ये कहानी है मेरे अस्तित्व के कश्मकश की, चक्रव्यूह में घुटते मेरे अरमानों की, मेरे अजन्मे वजूद की, मेरी रुकती साँसों की और मेरी बिलखती अन्तर्रात्मा की। ये कहानी है मेरे उन शब्दों की जो अंदर ही अंदर घुट गए, मेरी अनसुनी सिसकियों की और मेरी अनकही सच्चाई की। ये कहानी है मेरे पनपते अंगों की, मेरे टूटते जिस्म की पीड़ा की, मेरी अतृप्त प्यास की और मेरी उस रोशनी की जो अंधकार में डूब गई। ये कहानी है मेरे अनछुए स्पर्श की, मेरे अनदेखे संसार की, मेरी अलिखित एहसासों की और मेरे रुके हुए कदमों के आहट की। ये कहानी है मेरे मन की अनसुलझी भावनाओं की, मेरे अनबूझे प्रश्नों की, ममता की चाहत की तड़प की और मेरी उस धड़कन की जो महसूस ही नहीं की गई।

जानना चाहेंगे मैं कौन हूँ ? सुनना चाहेंगे मेरी कहानी ? समझना चाहेंगे मेरे जज़्बात ? क्या विश्वास कर पायेंगे मुझपर ? क्या मेरे दर्द को अपना पायेंगे ? क्या मेरे रुदन को रोक पायेंगे ? क्या मेरे मरते हुए शरीर में प्राण फूँक पायेंगे ? क्या मुझे खुली हवा में जीने देंगे ? क्या दिला पायेंगे मुझे मेरा हक़ ? अगर हाँ, तो आइये आज सुनाती हूँ अपनी कहानी, बताती हूँ मैं कौन हूँ और कहाँ से आई हूँ। मैं वो बीज हूँ जिसे अपने सुख के लिए, अपनी वासना के लिए, अपनी प्यास बुझाने के लिए बोया गया पर सींचा नहीं गया। जब मैं सांस लेने लगी मुझे रौंद दिया गया, मसल दिया गया, खिलने नहीं दिया गया और मेरे अस्तित्व को रेज़ा-रेज़ा कर दिया गया।

जानते हैं क्यों ? क्योंकि, मुझे व मेरे अंतस को कमज़ोर समझा गया, मुझे असहाय व अबला समझा गया, मेरे जीवन के महत्व को कम

आंका गया या यूँ कहिए नकारा गया इसीलिए मेरे दर्द व पीड़ा को अनदेखा किया गया। जन्म लिया तो मेरे स्त्रीत्व को पुरुषों के समाज में हमेशा दूसरा दर्ज़ा दिया गया, अपने पुरुषत्व के गुरूर में मुझे दबाया गया, नोचा-खसोटा व दबोचा गया और मेरी पीड़ा का इल्म भी नहीं हुआ। जन्म स्त्री की कोख से लिया गया किन्तु फिर भी वो सम्मान नहीं दिया गया, मुझे जन्म से पूर्व ही पराया समझा गया और इसीलिए मुखाग्नि देने का हक़ भी मुझसे छीना गया।

मेरी कहानी एक अनसुलझी पहेली सी है, कुछ बिखरी, कुछ उलझी और समेटने की चाहत में कहीं खो सी जाती। मेरी कहानी कभी कुछ खोजती, कभी कुछ पाना चाहती, कभी भय के एहसास में जीती तो कभी सुरक्षा के आभास से निश्चिन्त हो जाती। मेरी कहानी कई उतार-चढ़ाव से गुज़री, जीने की चाह लिए ज़िन्दगी की कई लड़ाई लड़ीं और जीवन पाने के लिए कभी जीती तो कभी हारी। नन्हे बीज से एक पूर्ण स्त्री बनने की, मेरे अस्तित्व के कश्मकश की मेरी ये कहानी मेरे अन्तर्मन की दबी आहट है जो हर नारी की कहानी है।

****

एक छोटी बूँद से प्रारंभ हुई मेरी ज़िन्दगी मेरे लिए किसी अनहोनी से कम नहीं थी। एक बिंदु से विकसित हुआ मेरा शरीर बहुत ही रोमांचित करने वाला था। एक-एक अंग को बढ़ते हुए, निकलते हुए महसूस कर रही थी। मैं नन्ही सी न जाने किसकी कोख में सांस भर रही थी जो मुझे बहुत प्यार से, दुलार से अपनी ममता की छांव में मुझे छुपाए हुए थी। मैं भी उस स्नेह की शीतलता में डूब जाना चाहती थी। उस सुरक्षा कवच में मैं खुद को महफ़ूज़ समझती थी। कभी उसके प्यार भरे स्पर्श को अपने शरीर पर महसूस करती, कभी उसकी सांसें मुझे सुनाई पड़तीं तो कभी उसकी

आवाज़ मेरे कानों से टकराती। न जाने वो कौन थी पर वही मेरे जीने का संबल थी।

उसी कोख में पाया मैंने नवजीवन वहीं मेरे मस्तिष्क का विकास हुआ, कुछ सोचने समझने की बुद्धि आई, वहीं मेरे दिल ने धड़कना सीखा और धमनियों में रक्त का संचार सीखा। एक अद्‌भुत सा एहसास हुआ जब उस मांस के लोथड़े में अंग बनने लगे। धीरे-धीरे बढ़ते हाथ-पैर, उसमें निकलतीं नन्ही पतली उंगलियाँ और बहुत ही विचित्र लगा जब उन उंगलियों में नाखून आये। कुछ छूने, पकड़ने को लालायित उंगलियाँ जब हिलतीं तो बहुत ही सुखद अनुभूति होती। पलकें बन्द थीं पर लग रहा था उन बन्द आँखों से सब कुछ देख पा रही हूँ। कान पूरे बने नहीं थे पर जिसकी कोख में पल रही थी उसकी सांसें, उसकी आवाज़ की पहचान ही मेरा सहारा थी।

बाहरी अंगों के साथ अंदरूनी अंगों के विकास की प्रक्रिया भी तेज़ होती महसूस हुई। फेफड़े, आँतें, गुर्दे आदि सबकी कार्यकुशलता, सोने जागने की क्रिया और स्वाद स्पर्श की संवेदना हैरान करने वाली थी। भूख से व्याकुल होती तो न जाने कैसे पेट भर जाता। पता नहीं कभी परेशान हुई या नहीं लेकिन कभी आँखें भींगी हो इसका एहसास नहीं हुआ। कभी हिलती, कभी घूमती, कभी पांव पसारती, कभी अंगड़ाई लेती तो शरीर पर हल्के स्पर्श का एहसास होता। उस कोख में पलकर कब बूँद से सागर बन गयी, कब मांस के एक बिंदु से बढ़कर पूरा शरीर बन गयी पता ही न चला। मुझे ऐसा लगता था मानों जिसके अंदर मैं सांस ले रही थी उसकी नाभि से नहीं उसके हृदय से जुड़ी थी।

प्रथम सप्ताह की बूँद से प्रारम्भ होकर छत्तीसवें सप्ताह तक के सागर के सफ़र की सुखद अनुभूति अकथनीय थी, मेरा सर्वस्व थी। मरना क्या था नहीं जानती थी लेकिन मैं उसी में जीना चाहती थी क्योंकि जिस सुरक्षा का एहसास मुझे हुआ, जिस स्नेह की गर्माहट का, जिस ममता भरे अनजाने स्पर्श का आभास मुझे हुआ वो अपनत्व भरा लगा। वो एहसास

सचमुच अवर्णनीय है। यद्यपि बाहर की दुनिया का इल्म मुझे नहीं था फिर भी मैं उस कोख से बाहर आना नहीं चाहती थी क्योंकि वहीं मेरी दुनिया सिमटी थी, वही मेरी पूजा थी, वही मेरी मंज़िल थी और शायद वही मेरी माँ थी।

****

अजीब सी कसमसाहट सी थी, न जाने कैसी बेचैनी सी थी, समझ नहीं पा रही थी मेरा दिल क्यों डूबा जा रहा था, किसी अनहोनी का आभास सा हो रहा था, अजीब सी भयानक सी आवाज़ें मेरे कानों से टकरा रही थीं। डर से सिकुड़ कर मैं माँ की कोख में और सिमट गई। मेरी सुरक्षा कवच पर ये कैसा दबाव था, मेरे कानों में ये किसकी चीखें गूँज रही थीं, मुझे ऐसा क्यों लग रहा था कि कोई मुझे खींच कर बाहर निकाल देना चाहता था, मेरे अंग प्रत्यंग क्यों टूट से रहे थे, मेरी सांस घुट क्यों रही थी। किसे पुकारूँ, कैसे खुद को बचाऊँ। मुझे ऐसा क्यों लग रहा था कि मैं गहन अँधेरी गुफाओं से होती हुई किसी पाताल लोक में धँसती जा रही हूँ।

कुछ अजीब सी विस्मित कर देने वाली स्थिति से गुज़रते हुये मुझे कुछ याद आया। मैं पूर्व जन्मों में खो गयी जहाँ हर बार खुद को मैंने कोख में ही पाया, हर बार जीने की चाहत लिए मैंने न हारने की लड़ाई लड़ी लेकिन हर बार छली गयी। मेरे अंगों को खींच-खींच कर निकाला गया। मेरा दर्द, मेरी चीखों, मेरी सिसकियों को किसी ने न सुना, मेरे दुःख, मेरी पीड़ा को नज़रंदाज़ किया गया। खून में लिप्त मेरे जिस्म के टुकड़ों को तार-तार कर दिया गया। जानते हैं क्यों ? क्योंकि, मैं स्त्री रूप में जन्मी थी। मैं तो पराया धन थी, किसी और की अमानत थी। न मैं उनका वंशज थी और न ही उनका वंश बढ़ा सकती थी।

मैं सिसकती रही
किसी ने न जानी मेरी पीर,
मेरी आत्मा पर हुए वार,
मेरे वजूद को नाकारा गया,
बार-बार मेरे
समूल को नष्ट करने का
प्रयास किया गया,
मैं जीने को आतुर थी,
पर बाहरी दुनिया से अपरिचित थी,
दरिंदों ने मुझ नन्हे बीज की
खामोश सिसकियाँ वहीं दफ़न कर दीं,
मुझे पूछने का अवसर भी न मिला
किस बात की सजा मिली मुझे ?
क्यों मेरा जीवन छीना गया ?
मेरी घुटती साँसें पुकारती रहीं
आखिर कब मिलेगा मुझे
जीने का अधिकार ?
आखिर कब ले पाऊँगी खुली सांस ?
आखिर कब देख पाऊँगी ये संसार ?
पर मेरा ये मासूम सवाल कहीं खो गया
कहीं लुप्त हो गया।

****

मैं एक नया जन्म पाने वाली थी और न जाने क्यों पुराने ज़ख्म उभर रहे थे। वो दुःख भरे जन्म मेरी आँखों के सामने तैर गये। अभी कोख से बाहर निकल दुनिया देखी भी नहीं थी कि पिछले जन्म अपनी कहानी कहने लगे। नहीं समझ पाई कि ऐसा क्यों हो रहा है। क्या मुझे नया जन्म न लेने के लिए आगाह किया जा रहा था या जन्म लेने पर दरिन्दों से बचने के लिए कहा जा रहा था? असमंजस में पड़ गयी, तभी फिर वही आवाज़ें, औजारों की खटर-पटर से तंद्रा टूटी और मैंने लौट कर खुद को फिर कोख में पाया, फिर उसी पाताल में धँसते पाया।

एक ओर मन ये कहता कि बाहर की खूबसूरत प्रकृति, ऊँचे भवन, नीले आकाश में उड़ते विभिन्न आकार के बादल, सूरज की किरणों की रोशनी, चन्द्रमा की शीतलता, तारों से घिरी शाम, चाँदनी रात, बर्फ से ढके पर्वत और रंग-बिरंगे फूलों से सुगन्धित उपवन देखूँ। नदियों के जल में डुबकी मैं भी लगाऊँ, दूर सागर और आकाश को मिलते हुए देखूँ, चीं-चीं करती चिड़ियाँ देखूँ, तितली पकड़ूँ, माता-पिता में साक्षात ईश्वर के दर्शन मैं भी करूँ। तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन मैं भी चखूँ, गुरुओं का आशीर्वाद मुझे भी मिले, मुझे भी मित्रता का सुख मिले और प्रिय के स्पर्श सुख का आनंद मैं भी लूँ, पर क्या ये संभव था ?

दूसरी ओर धरती के घिनौने कृत्य यादकर मन भय से कांप जाता। एक बार फिर पिछले जन्म में अपने पर हुए कुकृत्य याद आ गए। बेचैनी से कांपने लगी मैं तभी एक ममता भरे स्पर्श को महसूस किया। ऐसा लगा मानों कुछ क्षण मैं जी ली। पलकें मूँद कर कुछ देर सो ली। धौंकनी की तरह तेज़ चलती अपनी उखड़ती सांसों को थमते पाया। किसी अपने के पास होने से सुकून का एहसास हुआ। डर कुछ दूर हुआ तो जन्म लेने की इच्छा तीव्र हो गयी और उस घेरे से जहाँ मैंने नौ महीने सुख व आराम से बिताये, बाहर आने की चाह जागी। घूमकर मैंने अपना सर नीचे की ओर कर लिया जिससे सरलता से जन्म ले सकूँ।

उधर रुक-रुक कर दर्द भरी चीखें मेरे कानों से टकरा रही थीं और इधर मैं भी कम बेचैन नहीं थी। मुझे भी घुटता हुआ सा लग रहा था मानों प्राण कहीं अटक रहे हों। बीच-बीच में थकान से आँखें मूँद लेती। नए संसार में आने की चाहत मुझमें थी और अपने अस्तित्व को पहचान देने के लिए जन्म देने वाली यदि कष्ट उठा रही थी तो बाहर आने के लिए जद्दोजहद मुझे भी करनी पड़ रही थी। हम हार कहाँ सकती थीं क्योंकि हम दोनों ही स्त्रियाँ थीं। हम कोमल दिखती अवश्य थीं किंतु हमारे वजूद में हिम्मत व हौसला भरपूर समाया था।

मैं नारी हूँ
पुरुष से कुछ अलग
पहचान रखती हूँ,
भले ही कोमल दिखती हूँ
नाज़ुक और नर्म दिखती हूँ
पर मेरा अंतस शक्तिशाली है,
मैं पुरुष की तरह
कमज़ोर नहीं हूँ,
पीड़ा में, दुःख में
मैं शोर मचाकर
अपना कष्ट नहीं दिखाती,
मेरा मौन ही मेरी शक्ति है,
मेरे अल्फाज़ भले ही धीमे हों
भले ही उनमें आवाज़ न हो
किन्तु उनमें वज़न है,
मैं वो नारी हूँ
जिसने शरीर की
सारी हड्डियों के टूटने से भी

अधिक दर्द सहन कर
जीवन दिया है
सृष्टि रची है
फिर भी उफ़ नहीं किया,
दुत्कारी भी गयी हूँ
अत्याचारों की भी शिकार हुई हूँ
पर आवाज़ नहीं की,
मैं पीड़ा में भी मुस्कुराती हूँ
अपना दर्द पी लेती हूँ
नहीं लाती माथे पर शिकन,
भले ही कोख से
जीवन के अंत तक
मुझे सदा दूसरा दर्ज़ा मिला,
फिर भी शोर मचाकर
अपना हक़ जतलाना मेरी फितरत नहीं
मेरी पहचान है
और यही पहचान मुझे
पुरुष से बहुत अलग कर देती है,
और हाँ, शायद इसीलिए मैं पुरुष से अलग हूँ।

****

पलकें बन्द करते ही पिछले जन्म बरबस ही नज़रों के सामने आ जाते। दिखाई देने लगते वो दर्द भरे क्षण, दिखाई देने लगते वो भयानक पल जब मेरी मासूमियत को कुचला गया, मेरी भावनाओं को रौंदा गया, मेरी इच्छाओं को तोड़ा गया और मेरे जीने का हक़ मुझसे छीना गया। कोख से शुरू हुई यातनाएं जीवन के अंत तक चलीं। शायद मुझे स्त्री होने

की सज़ा दी गयी। न मेरी बाल्यावस्था को दुलारा गया, न वृद्धावस्था को सहारा दिया गया। युवावस्था में जिसके द्वारा सदा भोगी गयी उसी के द्वारा ठुकराई गयी और लातों-घूँसों से दुत्कारी गयी।

कैसे बताऊँ अभी कोख में पूरी पनपी भी नहीं थी, मेरे लिंग की जाँच प्रारम्भ हो गयी और जैसे ही ये पता चला कि मैं कन्या बीज हूँ, मुझे मारने, गिराने की साजिशें बनने लगीं। मुझे खत्म करने के उपाय खोजे जाने लगे। गर्भ गिराने वाले चिकित्सकों की राय ली गयी तो कभी ज़हरीली दवाइयों से मेरा अंत किया गया। मैं भी जीना चाहती हूँ ये किसी ने न समझा। बहुत चाहा खुद को बचा लूँ, ये सोच कोख की दीवार से चिपक गयी पर वो निरीह मुझे खींच लाये। मैं असहाय सी हो गयी, बेबस हो गयी। मुझे एक मांस का निर्जीव लोथड़ा समझ कर निकाल दिया गया।

मैं भी बहुत जिद्दी थी, कुछ समय बाद पुनः कोख में कन्या बीज बन बढ़ने लगी। इस बार शायद गलत जाँच हो गयी थी इसलिए ये सोचकर कि बेटा ही होगा वो लोग निश्चिन्त थे। मैं धीरे-धीरे बढ़ने लगी। मेरी आँखें, नाक, कान, उंगलियाँ, हाथ-पैर, दिल सब बन गया था। अचानक चिकित्सक ने घोषणा की लड़का नहीं लड़की है लेकिन अब गर्भ गिराना सरल नहीं। पर वो दरिंदे कहाँ मानने वाले थे। ले गए किसी लालची डॉक्टर के पास और करवा दिया मेरा अंत। मेरी आँखों के आगे वो भयानक दृश्य घूम गया। कैसे मेरी एक-एक उंगली कट के गिरी, कैसे मेरी पलकें झड़ी, कैसे मेरे हाथ-पैर अलग हुए और कैसे मेरे शरीर के अंग टूट-टूट कर गिरे। कष्ट और पीड़ा से मैं अंदर तक कराह गयी।

इतना कष्ट झेलकर भी मैंने हार नहीं मानी। आखिर स्त्री जो थी, भला टूट कैसे सकती थी, मुझे अपना अस्तित्व जो साबित करना था। पुनः कन्या बीज बन कोख में समा गई। इसबार पूरे नौ महीने मैंने कोख में बिताये। सुख व सुरक्षा के एहसास से मुझे जीने की उम्मीद बंध गयी। अपने गुप्त अंग को ऐसे छुपाया कि वो मेरा लिंग परीक्षण ही न करा पाये। पर

कब तक छुपाती। जन्म के समय तो सामने आना ही था। मैंने जन्म लिया, कनखियों से देखा तो माँ के चेहरे पर खुशी की लहर देखी, आखिर वो भी तो मानसिक और शारीरिक कष्ट झेल रही थी। घर के लोगों द्वारा इस बार नया पैंतरा अपनाया गया। जब माँ सो गई तो मुझे चादर में लपेट कूड़ेदान में फेंक आये। मैं ठंड और भूख से पूरी रात रोती रही। नन्ही सी जान थी, कब तक सहती। सुबह होते-होते मैंने दम तोड़ दिया।

मैं अंदर से टूट चुकी थी लेकिन हिम्मत तब भी नहीं हारी। एक बार फिर कोख में जा छुपी। समय पूरा होते ही माँ के आँचल में सिमट गई। धीरे-धीरे बढ़ने लगी, पूर्णिमा के सुंदर चन्द्र सी खूबसूरत दिखने लगी। इस बार परिवार की भी लाडली बन गयी। मन से बच्ची थी पर शरीर भरने लगा था। बाहर जाती तो वासना भरी नज़रें मुझे घूरतीं। मैं डरी सहमी सी रहती। अभी दस बरस की ही हुई थी कि वहशियों की वासना का शिकार हो गयी। मैं चीखती रही, चिल्लाती रही, दर्द से कराहती रही और अपनी जान की भीख मांगती रही पर उन पाँचों हैवानों ने मिलकर मुझे मसल दिया, मेरे जिस्म को भूखे बाघ की तरह नोच खाया। मुझे बेहोशी छाने लगी। उन राक्षसों ने मेरी कच्ची उम्र का ख़्याल न कर मेरा गला रेंत दिया। मैं एक बार फिर जी कर मर गयी।

न जाने कितने जन्म मैं ऐसे ही तड़पायी गयी। कभी अपनों की बुरी नज़र की शिकार हुई, कभी दहेज के लिए जिंदा जलाई गई, कभी वेश्यावृत्ति के लिए बेची गयी। यदि इस दरिंदगी से बची तो घर की चारदीवारी में क़ैद कर दी गयी। प्रतिदिन की मार-पीट के साथ बेवजह के कसते तानों से मानसिक रूप से बेइंतिहा सताई गयी। मैं समझ ही नहीं पाई कि मेरा क़ुसूर क्या था, मैंने क्या पाप किया था जो मेरे साथ ये सुलूक हुआ। क्या स्त्री होना पाप था ? क्या स्त्री को जन्म देना अपराध था ? जिस कोख में पुरुष भी पला, जिस कोख में पुरुष के भी सब अंग बने, जिस कोख में पुरुष ने भी सांस ली क्या वो कोख एक कन्या को जन्म देकर

कलंकित हो जाती है ? इन प्रश्नों के उत्तर शायद आज भी अनुत्तरित ही हैं।

****

शिशु जन्म के बाद सोते-सोते कभी मुस्कुराता है, कभी अचानक रोने लगता है, कभी मुँह चलाता है मानों दूध पी रहा हो। ये क्रियाएं वो न सिर्फ जन्म के बाद करता है अपितु जन्म से पहले भी करता है। अंतर यही है कि जन्म के बाद हम उसकी ये चेष्ठाएँ देख पाते हैं। कहा जाता है कि उस समय उसको पूर्व जन्म की याद रहती है, वो उसी की खुमारी में रहता है। मैं भी उसी खुमारी में जी रही थी। एक-एक करके मुझे अपने सभी जन्म याद आते जा रहे थे। ऐसा नहीं था कि मुझे स्नेह न मिला हो, अपनापन न मिला हो पर आत्मा पर इतनी गहरी चोट खाई थी, दिल पर इतने सख़्त प्रहार झेले थे कि ख़ुद को संभालने का वक़्त ही न मिला और मैं उन्हीं दुःखद लम्हों में जी-जी कर मरती रही। नारी रूप में जन्म लेकर, कष्टों को झेलकर दुःखी व निराश हो मन के जज़्बात कुछ यूँ निकल पड़े----

देखे होंगे माँ ने कितने ही सपने
जब उसकी कोख में मैं आई थी बसने
कभी पेट सहला पुचकारती होगी
कहीं चोट न लग जाये
ये सोच मुझे बचाती होगी,
जन्मते ही बाहों का झूला दे
लोरी सुनाती होगी
बेटी मेरी शान है

ये सबको बताती होगी।
आज देख मेरी मृतकाया
बुत बन गयी है वो
आँखें पथरा गयीं
मन ही मन बिलख रही है वो।
नहीं जानती थी
ये दुनिया नोच खायेगी मुझे
वरना जन्म से पहले ही
वो खत्म कर देती मुझे।

जहाँ छम-छम करती थीं
मेरी पायल की गूँजें
आज दरो-दीवार से टकरा रहीं
मेरी दर्द भरी चीखें।
मैं भोली थी, बेफिक्र थी
मुझे न था ये इल्म
घूम रहे जो इर्द गिर्द
ढायेंगे ये ज़ुल्म।
कहाँ जानती थी होगा मुझ संग
यूँ हैवानियत का खेल
रौंदी जाऊँगी इस क़दर
चलता रहेगा घण्टों ये नंगा खेल।
वो एक-एक कर आते रहे
भूखे शेर की तरह झपट पड़े
रौंदते रहे, मसलते रहे
गिद्धों की तरह नोच डाले अंग प्रत्यंग
कर डाला स्त्रीत्व भंग।
मैं चीखती रही, चिल्लाती रही

अस्मत की भीख माँगती रही
न आई उन्हें दया
मैं निरीह दरिंदों बीच पिसती रही।
जिस्म हुआ तार-तार
छिन गया तन का चैन
रेज़ा-रेज़ा बिखर गई
मन हो गया बेचैन।
इतने से भी नहीं मिला
उनके मन को सुकूं
मार चाकू किया छलनी
न कांपी उनकी रूह।

पूछ रही आज हर नारी
क्यों कोख हुई बदनाम ?
सपोलों को दे जनम
हर माँ का क्यों हो रहा अपमान ?
क्या है ये वही कोख
जहाँ से जन्मे थे
राम और विवेकानन्द ?
क्यों नहीं आज भी जन्मते
कृष्ण और दयानन्द ?
कह रही आज हर नारी
नहीं चाह मुझे
ऐसे वहशी दरिंदों की
माँ कहलाऊँ
ऐसे बेटों से तो
मैं बाँझ ही मर जाऊँ।

हे प्रभु ! न चाहूँ कुछ
हे प्रभु ! न मांगू कुछ
बस इतना वरदान तुम दीजो
अगले जनम
हाँ, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो,
हाँ, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो।

****

पर ये क्या ? स्वयं अपनी ही लेखनी पर आज मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या मैं इतनी कमज़ोर हूँ, क्या मैं इतनी बेबस हूँ जो चंद राक्षसों का सामना नहीं कर सकती। क्या इन दरिंदों के कारण मैं जन्म नहीं लूँगी। क्या मेरा कोई अस्तित्व नहीं। क्या हर बार इसी तरह पुरुष से छली जाऊँगी। नारी तो शक्तिस्वरूपा कहलाती है। माँ दुर्गा के नौ रूपों में जन्म लेने वाली शक्तिदायिनी का एक अंश हूँ मैं। मैं लाचार नहीं, मैं असहाय नहीं। मुझमें कोमलता है तो समय आने पर मैं कठोर भी हो सकती हूँ। मेरा अंतस इतना कमज़ोर नहीं, मैं चाहूँ तो इन राक्षसों को भस्म कर सकती हूँ, उनको सबक सिखा सकती हूँ।

अपने अस्तित्व को पाने के लिए, उसे एक नई पहचान देने के लिए इस बार जन्म लेते समय मैंने खुद को मज़बूत किया और खुद से एक फैसला किया कि सम्पूर्ण नारी जाति को देना है एक खुला आकाश और आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त करने हैं। पुरुषों के समाज में पुरुषों को ही हार देनी है और दूसरा नहीं, उनके बराबर का दर्ज़ा पाना है। मुझे दासी नहीं स्वामिनी बनना है जिससे मैं गर्व से कह सकूँ कि मैं एक निर्भीक व सबला नारी हूँ। मुझे वो नारी कहलाना था जो अल्प में भी विकल्प चुन ले, अपर्याप्त में भी पर्याप्त समेट ले और अपूर्ण को भी पूर्ण कर दे। मुझे कैक्टस सदृश बनना था जो बिन पोषण के मरुभूमि में भी जी लेता है।

नारी बिना संसार अधूरा है। वो नारी ही है जो सृष्टिकर्त्ता है। ये पुरुष जो दम्भ में रहता है, स्वयं को संसार का कर्ता-धर्ता कहता है, सच कहा जाये तो नारी के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं। ऐसा नहीं है कि मैं पुरुषों के खिलाफ़ हूँ, जानती हूँ स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरा अधूरा है किन्तु स्वयं को सर्वस्व मानकर नारी को नीचा दिखाना, नारी के स्त्रीत्व से खेलना, भ्रूण हत्या, अबोध कन्याओं के साथ बलात्कार करना, उन्हें जान से मार देना आदि बातों का विरोध करती हूँ। ये भी सच है कि समाज के चंद मानसिक बीमारी से ग्रस्त लोगों का ये कार्य है और मेरी आवाज़ उन्हीं के खिलाफ़ है।

ये कहानी सिर्फ मेरी नहीं, हर स्त्री की है क्योंकि कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी हर नारी का शोषण हुआ है। वो शोषण किसी भी रूप में हो सकता है। घर में, कार्यस्थल पर, बाज़ार में, वाहनों में, अस्पतालों में और यहाँ तक कि मंदिरों में भी। यद्यपि अपवाद भी हैं, कई स्त्रियों ने पुरुषों का शोषण भी किया है किन्तु उसकी संख्या बहुत कम है। जिस तरह की स्थिति आजकल है जहाँ नवजात बच्ची से लेकर अस्सी नब्बे वर्ष तक की बूढ़ी स्त्री भी सुरक्षित नहीं, वहाँ असुरक्षा की भावना से स्त्रियों की आवाज़ स्वतः ही बुलन्द होना स्वाभाविक है और आवश्यक भी। एक जोश से भर गई और कुछ कर दिखाने की भावना जन्म लेने लगी।

मैं हूँ सबला नारी
मैं नहीं हूँ अबला नारी,
जियूँगी वर्तमान में
लूँगी सांस खुली हवा में,
घुट-घुट कर नहीं रहूँगी
मर-मर कर नहीं जियूँगी,
मुझे भरनी है नयी उड़ान

हर नारी को देनी है नई जान,
है अजब सी जिज्ञासा
गगन समेटने की चाह
देख दुख-दर्द अपने
नहीं भरनी है अब आह,
अपने लक्ष्य को करूँ तय
बन जाऊँ निर्भय,
रुकूँ न मैं कहीं
झुकूँ न मैं कहीं,
हिम्मत है मुझमें
हौसला भी है मुझमें,
न रोको मुझे, न टोको मुझे
जीना नहीं बनके अबला मुझे,
टिकना नहीं ज़मीं पे मुझे
भरनी है उड़ान आसमां पे मुझे,
हर मंज़िल पे महकेंगे
मेरे क़दमों के निशां
पाऊँगी एक दिन मैं अपनी पहचान,
देश की मैं हूँ अनमोल बड़ी
चमकती हूँ ऐसे ज्यों पारसमणि,
मैं निकली हूँ आज ढूँढने अपनी पहचान
रुपहली सी धूप पे जैसे वासंती बयार
मैं भारत माँ की हूँ पहली मुस्कान।
मैं भारत माँ की हूँ पहली मुस्कान।।

****

मैंने एक बार फिर कन्या रूप में जन्म लिया। ये जन्म मेरे लिए वरदान साबित हुआ। घर में ढोल ताल पर नाच गा कर खुशियाँ मनाई गईं। घर को दुल्हन की तरह सजाकर मेरा स्वागत किया गया। आरती उतारी गई मानों लक्ष्मी रूप में मैंने घर में पदार्पण किया हो। हर कोई मुझे गोद में लेने को बेक़रार था। कोई प्यार से चूम लेता, कोई बाहों का झूला झुलाता तो कोई लोरी सुना थपकी देता। पूरा परिवार मेरे इर्द-गिर्द घूमता रहता। सबने अलग-अलग नाम दिए मुझे, कोई गुड़िया कहता, कोई रानी कहता, कोई लक्ष्मी कहता तो कोई राजकुमारी कहता। जिस अपनत्व के लिए मैं कई जन्मों तक तरसी थी आज उससे मेरी झोली भर गई थी।

समय तेज़ी से आगे बढ़ता गया और मैं भी उसी गति से बढ़ने लगी। माता-पिता ने भरपूर प्यार के साथ मेरी शिक्षा में भी कमी नहीं रखी। मैं तीव्र बुद्धि की मल्लिका थी। खेल-कूद, नृत्य-संगीत और अन्य सभी क्षेत्रों में अग्रणी रही। उच्च शिक्षा से शिक्षित होने के कारण बहुतों को पीछे छोड़ मैं एक अच्छी कंपनी में मैनेजर के पद पर कार्यरत हो गयी। आगे बढ़ने की होड़ तब भी बनी रही। सच्ची लगन और कड़े परिश्रम से कभी कदम पीछे नहीं हटाया। सामाजिक क्षेत्र में भी कुछ करने की इच्छा हुई तो खाली समय में गरीब बच्चों को शिक्षित करना शुरू किया। इस तरह जीवन में अपनी पहचान बनाने के लिए एक कदम और बढ़ाया। घर में सभी से सहयोग मिला तो मैं प्रगति के पथ पर बढ़ती ही गयी।

इतना प्यार दुलार पाकर भी मुझे एक बात हमेशा खटकती रही वो थी पिता का माँ के प्रति उग्र व्यवहार। एक पत्नी को जो मान सम्मान पति से मिलना चाहिए था वो माँ को कभी नहीं मिला। मैं पिता को रोकती तो मेरे साथ भी वो बहुत खराब तरह पेश आते थे। हमें लगता मानों हम उनके गुलाम हों। पिताजी को देख-देख ऐसी ही कुछ भावना छोटे भाई में भी समाती जा रही थी। मैं बड़ी थी पर वो ऐसा व्यवहार करता मानों मैं उससे बहुत छोटी हूँ। समझाने पर भड़क जाता। उन दोनों का ऐसा

व्यवहार मुझे सोचने पर मजबूर कर देता और मुझे लगता कि पुरुषत्व का अहम उनमें समाया है।

जब बेटी युवा होने लगती है तो उसके हाथ पीले करने की चिंता माता-पिता को सताने लगती है। यही हुआ मेरे घर में भी। मेरे माता-पिता भी औरों के अभिभावक की तरह थे। चिंतित हो लग गए मेरे लिए उपयुक्त वर ढूँढने में। कई रिश्ते देखे पर हर जगह पिताजी कोई-न-कोई कमी निकाल देते। कभी कहते लड़का हमारी बेटी से कम पढ़ा-लिखा है, कभी कहते नौकरी अच्छी नहीं। कभी सुंदरता आड़े आ जाती तो कभी बड़ा परिवार। पर जानते हैं न विवाह तो संजोग से होते हैं और जोड़ियाँ स्वर्ग में बनती हैं। ईश्वर ने कहीं-न-कहीं हमारी बेटी की भी जोड़ी बना रखी है ये कहकर पिताजी खुद को तसल्ली देते।

आखिर वो दिन आ ही गया जब एक अच्छा परिवार मिल गया। माता-पिता संतुष्ट हुए तो दोनों तरफ से बात पक्की हो गयी। मेरे युवा मन में भी हलचल मचने लगी, दिल बल्लियों उछलने लगा और मैं कल्पनाओं के घोड़े पर सवारी करने लगी। एक नई दुनिया में प्रवेश की खुशी और उत्साह कुछ अलग ही था लेकिन कभी-कभी ये सोच सहम जाती कि पता नहीं मैं वहाँ सामंजस्य बैठा पाऊँगी या नहीं, नए लोग नये परिवेश में कोई मुझे समझ पायेगा या नहीं, क्या अपने नए परिवार को मैं अपना पाऊँगी या नहीं और क्या यहाँ की तरह स्वतंत्र जीवन जी पाऊँगी या नहीं पर अगले ही पल फिर उसी खुशी में डूब जाती।

कुछ ही दिनों में घर में शहनाई बजने लगी। घर मेहमानों से भर गया। फूलों की महक और रोशनी की लड़ियों से घर जगमगाने लगा। ढोलक की थाप पर गूँजते गीतों पर कदम थिरकने लगे। मेहन्दी, हल्दी जैसी रस्मों से घर का वातावरण महक गया। गाजे-बाजे के साथ जब बारात सज कर द्वार पर पहुँची तो मैं भी खुद को रोक न पाई और बारात देखने खिड़की पर पहुँच गयी। जयमाल, कन्या दान, फेरे आदि के बीच सबसे नज़रें बचाकर मैं चुपके से पति को देख लेती और कभी हल्का सा भी स्पर्श हो जाता तो मैं रोमांचित हो जाती। पंडितजी के मंत्रों के साथ

जब विदाई का क्षण आया तो मैं फूट पड़ी। जहाँ एक ओर नए जीवन में प्रवेश की खुशी थी वहीं अपनों को छोड़कर जाने का दर्द भी था। माता-पिता ने गले से लगाया और आशीर्वाद दे घर से विदा किया।

ससुराल में पहला कदम रखा तो मन में एक अलग भावना आ गयी। लगा अब यही मेरा घर है। आमतौर से हर लड़की बहुत जल्दी स्वयं को नए माहौल में ढाल लेती है, बहुत सरलता से पराए घर को अपना मान लेती है। ये गुण पुरुषों में नहीं होता, शायद तभी शादी के बाद विदाई की रस्म सिर्फ स्त्रियों के लिए ही होती है। कुछ रस्मों के बाद मुझे मेरा कमरा दिखाया गया जहाँ मुझे खुद का समर्पण करना था। एक ओर अपने जीवन साथी को देखने, बात करने और जानने की उत्सुकता थी तो दूसरी ओर एक भय भी था, सुहागरात का भय। बताना मुश्किल है मैं कितना अलग महसूस कर रही थी। एक दिन में मेरी ज़िंदगी बदल गयी थी, अब मैं त्रिवेदी से त्रिपाठी बन गयी थी।

छुई-मुई सी मैं गठरी बनकर पति के इंतज़ार में बैठी थी। एक स्वप्न आँखों में सजाये, भविष्य के सुनहरे दिन मन में बसाये मुझे उस घड़ी की प्रतीक्षा थी जब वो आयें और अपना सारा प्यार मुझ पर उड़ेंल दें। आधी रात बीत चुकी थी और मैं बेसब्री से दरवाज़े पर टकटकी लगाये बैठी थी। तभी चरमरा कर किसी साये ने दरवाज़ा खोला और लड़खड़ाते हुए पास आकर बिना कुछ कहे, बिना कुछ बात करे मेरा घूँघट उठा दिया। नज़रें मिलीं तो देखा पति नशे में चूर थे। मेरा सारा उत्साह काफ़ूर हो गया। वो भूखे बाघ की तरह मुझ पर झपट पड़े और मेरी शीलता को भंग कर दिया। सुहागरात के जो सुनहरे सपने मन में सजाये थे तार-तार हो गए।

विवाह के बाद पहली रात इस तरह बीतेगी कभी सोचा ही न था। एक आशा के साथ, एक विश्वास के साथ एक लड़की अपने पिछले सारे रिश्ते छोड़कर नए रिश्तों को अपनाती है, उन्हें अपना मानती है और जिसके लिए वो ये करती है यदि उसी का व्यवहार ऐसा हो तो उसका दिल टूट जाता है, उत्साह समाप्त हो जाता है और मायूसी उसको घेर लेती

है। ऐसा ही मेरे साथ हुआ। सुबह के इंतज़ार में बाकी रात जागते गुज़री। सुबह पति का व्यवहार बिल्कुल अलग था। नशा उतर चुका था और वो रात के अपने कृत्य के लिए शर्मिंदा थे। पर ये भी भला कोई बात हुई। जिस रात के सपने आँखों में संजोये मैं प्रतीक्षारत थी वो तो दोबारा आने वाली नहीं थी। किसी तरह मन को समझाया लेकिन मायूसी नहीं उतरी।

अब तो लगभग हर रात यही होता। वो अपनी प्यास शराब के नशे में चूर रहकर पूरी करते और मैं प्यार की प्यासी तरसती रहती। ससुराल पक्ष से भी सहयोग न मिला। दिन भर कार्यालय, शाम को गृहस्थी का काम और रात को देह का समर्पण। एक मशीन जैसी ज़िन्दगी से तंग आ गयी थी। कुछ समय बाद मुझे नौकरी छोड़ने के लिए दबाव डालने लगे। उन्हें लगता मैं अधिक कमाऊँगी तो उनपर हावी हो जाऊँगी। रोज़ के झगड़े से परेशान होकर मैंने नौकरी छोड़ने का फैसला कर लिया। न चाहते हुए भी मुझे घर की खुशी के लिए ये निर्णय लेना पड़ा। आखिर हर स्त्री पहले परिवार का सुख चाहती है क्योंकि उसके स्वभाव में ही, उसकी नस-नस में ही ये बसा होता है।

****

मुझे विवाह पूर्व अपने पीहर में बिताये दिन याद आ गए। सुख-सुविधा, स्नेह-ममता मेरे लिए जैसे एक कहानी हो गए थे। एक वो समय था जब मैं कूदती फाँदती रहती थी, मनमर्जी चलाती थी आज दबी ढकी जी रही थी। न अधिक बोल सकती थी, न मन की इच्छा पूरी कर सकती थी। किससे मन की बात करूँ और किससे अपनी टीस कहूँ, मन-ही-मन घुटती और छुप-छुप कर रोती। दुःख होता देखकर जब एक स्त्री दूसरी स्त्री का दर्द नहीं जान पाती, उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके मन की बात नहीं पूछ सकती। मैं जान गयी थी एक नारी माँ बन तो सकती है लेकिन उसके लिए माँ की कमी हमेशा रहती है।

सच है कि स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में बेटे से डरती और दबती रहती है। पुरुषों द्वारा उसके अस्तित्व को न कभी समझा गया और न कभी सराहा गया। नारी को समझने की उसने कभी कोशिश ही नहीं की। कोख के अंदर से प्रारंभ हुई स्त्री की यातना का अंत शायद अर्थी के साथ ही खत्म होता है। ये सब सुनते-सुनते, सहते-सहते मन परेशान हो उठा था और कुछ ऐसे ख़्याल मन में आये जिसे सिर्फ सोचकर ही मैं खुशी से झूम गयी। काश ऐसा हो पाता---

आज मुझ गृहणी
का मन बावरा हो गया है
सोफे पर बैठ
सामने मेज पर पैर फैला
बन कर रहना चाहता है गृहस्वामी।

आज मैं सबकी पसन्द का
नाश्ता बनाते हुए
ठंडी हो रही चाय
नहीं गटकना चाहती,
सुबह लेकर हाथों में अख़बार
धीरे-धीरे चाय की चुस्कियाँ
लेना चाहती हूँ,
और नाज़ नखरों से
भोजन में कमी निकालते हुए
कुछ चुटकियाँ लेना चाहती हूँ।
मेरे बावरे मन की
ज़रा इच्छा तो देखो
पलंग पर आराम से लेटकर

टी वी देखते हुए
पति को धुले हुए कपड़ों की
तह लगाते देखना चाहती हूँ,
इसी बीच मसाला चाय की
फरमाइश कर
पति को चाय का भगौना
हाथ में लिए
बच्चे को गणित के सवाल का हल समझाते हुए
साथ ही कुकर की सीटी
पर दौड़ते हुए
तभी द्वार पर बजती घण्टी सुन
भागते हुए दरवाज़ा खोलकर
धोबी का हिसाब करते हुए
देखना चाहती हूँ,
इसी बीच
"अरे क्या कर रहे हो, चाय नहीं बनी अब तक"
"अच्छा पकौड़े भी बना लाओ"
"और रात को कुछ अच्छा सा बना देना"
यह कहकर पति को
चक्करघिन्नी की तरह
घूमते देखना चाहती हूँ।

आज बावरा हो गया है मन
आज अचार धूप में रखना
और साँझ होते ही उठाना
नहीं चाहती,
सूखते कपड़ों को

अचानक आई बारिश में
भींगते देख
दौड़कर उठाना नहीं चाहती,
शाम को क्या सब्ज़ी बनेगी
सुबह टिफिन में क्या रखूँगी
आज कामवाली बाई
आएगी या नहीं
इस सोच में खुद को
जलाना नहीं चाहती
क्योंकि इसी सोच ने
मुझे जला-जला कर बुझा दिया है।

चादर की सिलवटें दूर करते-करते,
दीवारों के जाले साफ़ करते-करते,
खिड़कियों पर जमी
धूल पोंछते-पोंछते,
ज़माना बीत गया है
पर कानों में अब भी
वही आवाज़ गूँजती है
"तुम करती ही क्या हो"
नहीं याद कब आराम से लेटी
नहीं याद कब स्वाद ले खाया
नहीं याद कब अपने लिए
कुछ ख़्याल आया।
पर आज ये मन
हो गया बावरा,

और आज इस बावरेपन
की कल्पना ने
जो खुशी दी
उसने पूरी ज़िन्दगी के
ग़म भुला दिए,
ऐ मन !
तू बावरा ही रहना
तू बावरा ही रहना।

****

समय अपनी रफ्तार से बढ़ता रहा और मेरी ज़िन्दगी में कभी खुशी के तो कभी ग़म के छींटे पड़ते रहे। ज़िन्दगी की इस आपाधापी में मेरा अस्तित्व कहीं खो सा गया था। मैं जीवन में कुछ करना चाहती थी। मैं चाहती थी लोग मुझे मेरे नाम से जानें। मुझे अपने जीवन से निराशा होने लगी थी। इतनी शिक्षित होकर भी मेरा जीवन घर की चारदीवारी में बीत रहा था। एकदम मस्तिष्क को एक झटका सा लगा, कुछ याद आया। जन्म से पूर्व की कुछ स्मृतियाँ आँखों के समक्ष तैर गयीं। खुद से खुद का किया वादा याद आया। ये मैं किसमें उलझी हूँ ? ये मैं क्या कर रही हूँ ? क्या मैं इसी तरह पति के नाम से अपनी पहचान बनाऊँगी। ऐसे ही प्रश्न खुद से कर बैठी।

जीवन के चक्रव्यूह में, कोख में एक नन्हे बीज से शुरू हुई मेरे जीवन के कशमकश की इस यात्रा को एक नया मोड़ देने का वक़्त आ गया था। इस जन्म में मुझे कुछ कर दिखाने का अवसर मिला था। सम्पूर्ण नारी जाति के अस्तित्व को बचाना था। मैं अपनी एक अलग और अनोखी पहचान बनाना चाहती थी। ऐसा भी नहीं था कि घर-परिवार को त्यागना चाहती थी। मुझे इसी चक्रव्यूह में जीकर कुछ अलग करना था। एक आत्मविश्वास की कमी जो मन में घर कर गयी थी उसे दूर किया। मैं सबको

बता देना चाहती थी कि नारी कमज़ोर नहीं, वो सिर्फ़ घर में क़ैद होकर जीना नहीं जानती, आज पुरुष के कंधे से कंधे मिलाकर उसने भी अपना अस्तित्व खोज लिया है। वो भी चक्रव्यूह में रहकर जीना और उसे भेदना सीख गई है।

एक अनन्य जोश के साथ मैं सर उठाकर जीने लगी। मुझमें भी अब वो हिम्मत आ गयी थी कि मैं अपनी लड़ाई खुद लड़ सकूँ, खुलकर जी सकूँ और अपनी मर्यादा को पार न करते हुए जवाब दे सकूँ। मुझे जीने के लिए पति की मांग में सिंदूर नहीं भरना था, अपनी सलामती के लिए उससे व्रत उपवास नहीं करवाने थे। मैं पुरुषों को कम नहीं आंकती थी लेकिन अपनी भी पहचान बनाना चाहती थी क्योंकि समाज में दोनों का हक़ समान है। मुझमें हौसला था, हिम्मत थी और स्वयं पर विश्वास था कि मैं कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी खरी उतरूँगी और इसी आत्मविश्वास के सहारे मेरी जीत हुई। अब मैं घर की चारदीवारी में ही नहीं घर के बाहर भी अपनी अलग पहचान बना चुकी हूँ। जहाँ घर के लोग छोटे-छोटे कार्यों के लिए मुझ पर निर्भर हैं वहीं अब बाहर भी लोग मुझ पर निर्भर हैं। घर के बाहर भले ही मेरे नाम की तख़्ती नहीं है पर लोग मुझे मेरे नाम से जानते हैं, मेरे अस्तित्व को पहचानते हैं और उसकी कद्र करते हैं।

आज मैं उस व्यूह में रहकर चक्रव्यूह से बाहर निकल आई हूँ और मर्यादा में रहकर अपनी पहचान बना ली है, अपने लिए जीना सीख लिया है और अपना अस्तित्व खोज लिया है। जिस चक्रव्यूह में मेरी चीखें गूँजती थीं, आज उसी व्यूह में मिली है मुझे नयी ज़िन्दगी। आज मैं गर्व से कह सकती हूँ कि मैं वो स्त्री हूँ जिसने भावी नारियों के लिए एक नया मुक़ाम बनाया है। मैं अब भी पति की लंबी उम्र के लिए उपवास रखती हूँ, घर-परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ निभाती हूँ, सोलह श्रृंगार कर पति को रिझाती भी हूँ क्योंकि मैं स्त्री हूँ और ऐसा करना मुझे शोभा देता है लेकिन

अपने अस्तित्व से समझौता नहीं करती और अपनी अलग पहचान बताने में गर्व महसूस करती हूँ। आज मुझे अपने स्त्रीत्व पर स्वाभिमान है कि चक्रव्यूह में रहकर मैंने सिर्फ उलझना नहीं जीना सीख लिया है। कोख से प्रारंभ हुई कठिन यात्रा में अपने बलबूते पर जीवन के चढ़ते-उतरते पड़ाव का सामना किया, हार नहीं मानी और अपना स्वरूप बदला और बदले में मिला मुझे मेरा अलग व्यक्तित्व और मेरा अपना अस्तित्व।

जब जरा अंतस में झाँकती हूँ
देख लेती हूँ अपना अस्तित्व
पा लेती हूँ अपना वजूद,
जब भी पिता, पति, बेटे में
अपना अस्तित्व खोजती हूँ
गुम हो जाती हूँ
भटकने लगती हूँ,
स्वयं में स्वयं का वजूद ढूँढती मैं
जान जाती हूँ
मुझे किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता नहीं
मैं स्वयं ही अपना अस्तित्व हूँ।

जब भी मन में नर्म एहसास पनपते हैं
एक शूल सा चुभ जाता है
जो मुझे भूलने नहीं देता
कोमलता में छुपा
मेरी कठोरता का अस्तित्व
मैं समझ जाती हूँ
मैं गुलाब के पौधे सी
कुसुम औ' कण्टक से युक्त हूँ।

जब कभी भरना चाहती हूँ उड़ान
समेटना चाहती हूँ गगन
मुझे नज़र आती है धरती
जो भूलने नहीं देती
ज़मीं पर निखरा मेरा स्वरूप
मुझे एहसास हो जाता है
मेरा अस्तित्व दोनों पर समान है।

मेरे शांत मन में जब उठती हैं लपटें
मुझे दीख जाता है अपना अस्तित्व
मुझे लगने लगता है
मैं सिर्फ चाँदनी सी शीतलता नहीं
सूरज सी आग भी बरसा सकती हूँ।
कभी-कभी मुझे मेरा अस्तित्व
दीए की बाती सा
प्रतीत होता है,
अंधकार में प्रकाश फैलाता
तेल की अंतिम बूँद तक
जलने के लिए आतुर
और बुझकर चहुँ ओर
खुशबू फैलाता मेरा अस्तित्व
उस धुएँ जैसा सबमें समाया है।

जब भी खुद को टटोलती हूँ
मुझे एहसास होता है
मेरा अस्तित्व भीगी माटी सा है
सूखती आँखों में नमी दे जाता है

और शुष्क वृक्ष जैसी काया में
सुगंध दे जाता है,
मुझे लगने लगता है
मेरा अस्तित्व चंहु ओर व्याप्त है।

जब भी मैं
खुद को चक्रव्यूह में क़ैद देखती हूँ
उसे भेद कर बाहर आ जाती हूँ,
दुनिया को अपने
अस्तित्व की पहचान कराती
सबको दिखा देती हूँ
मेरा अस्तित्व मुझमें
ही समाया है, क्योंकि
मैं स्वयं ही अपना अस्तित्व हूँ
हाँ, मैं स्वयं ही अपना अस्तित्व हूँ।

नीरजा मेहता 'कमलिनी'

****

व्यक्तित्व दर्पण

नाम	- नीरजा मेहता 'कमलिनी'
जन्मतिथि	- 24 दिसम्बर 1956
शैक्षिक योग्यता	- एम.ए. (हिन्दी व संस्कृत), बी.एड., एल.एल.बी.
निवास स्थान	- कौशम्बी गाज़ियाबाद (यू.पी.)
फोन नं.	- 9654258770
मेल आई.डी.	- mehta.neerja24@gmail.com
विधा	- छंदमुक्त, गीत, मुक्तक, हाइकू, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, लेख आदि
प्रकाशित एकल पुस्तकें	(1) मन दर्पण (कविताएँ समीक्षा सहित) 2016 (2) नीरजा का आत्ममंथन (काव्य संग्रह) 2016 (3) उमंग (बाल काव्य संग्रह) 2017 (4) परछाइयाँ (संस्मरण) 2017 (5) सृजन समीक्षा (कविताएँ समीक्षा सहित) 2018 (6) ओस सी ज़िन्दगी (काव्य संग्रह) 2018 (7) हाँ, मैं ऐसी ही हूँ (8) काश तुम समझ पाते (9) खनक चूड़ियों की (10) एक टूकड़ा धूप
प्रकाशित साक्षा संग्रह	(1) 35 साझा काव्य संग्रह (2) 4 साझा कहानी संग्रह (3) 2 साझा लघु कथा संग्रह (4) 1 साझा लेख संग्रह (5) 1 साझा समीक्षा संग्रह (6) 2 परिचय संग्रह
पत्र पत्रिकाएं	- 2008 से अब तक देश विदेश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं व ई-पत्रिकाओं में लगभग 500 से अधिक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं और निरन्तर प्रकाशित होती रहती है।
सम्मान	- साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए विभिन्न संस्थाओं/समूहों द्वारा 2015 से अब तक लगभग 50 बार प्रशस्ति पत्र व स्मृति चिन्ह से सम्मानित।
जीवन का उद्देश्य	- कड़ी मेहनत, सच्ची लगन औन अनुशासन ही मेरी पूँजी है, साहित्य सेवा ही मेरा सपना है और सादगी ही मेरा जीवन है।

न छीन पाआगे कभी, बेवजह ये पहल है
ये ईंटों का नहीं, मेरे ख़्वाबों का महल है।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-88102-76-6

मूल्य 55/-